

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 50 — द्वारका की स्थापना

5 October 2026



सत्रह बार जरासन्ध अपनी सेनाएँ मथुरा पर चढ़ा लाता है, और सत्रह बार कृष्ण और बलराम उन्हें धूल की भाँति बिखेर देते हैं; फिर प्रभु समुद्र के भीतर एक अद्भुत नगरी रचकर अपने जनों को सुरक्षित वहाँ पहुँचा देते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। इस पचासवें अध्याय से दशम स्कन्ध का उत्तरार्ध आरम्भ होता है: मथुरा पर जरासन्ध के घेरे, आकाश से उतरे रथ और समुद्र में द्वारका का निर्माण।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 50 (पञ्चाशत्तम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: श्रीकृष्ण द्वारका नगरी की स्थापना करते हैं

- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मथुरा; फिर पश्चिमी समुद्र, जहाँ द्वारका बसाई गई
- केंद्रीय विषय: मथुरा पर जरासन्ध के घेरे; प्रभु के अवतार का प्रयोजन; जरासन्ध का छोड़ा जाना; कालयवन का आगमन; द्वारका का निर्माण
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 1-57
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

उनचासवें अध्याय में अक्रूर हस्तिनापुर गए, धृतराष्ट्र का पुत्र-पक्षपात देखा, कुन्ती की प्रार्थना सुनी, अन्धे राजा को न्याय का परामर्श दिया और लौटकर सब कुछ बलराम और कृष्ण को बताया। अब कथा मगध की ओर मुड़ती है, जहाँ एक और शोक युद्ध का रूप ले रहा है।

कंस की विधवाएँ और जरासन्ध का संकल्प

कंस के मारे जाने पर उसकी दोनों रानियाँ, अस्ति और प्राप्ति, शोक से व्याकुल होकर अपने पिता मगधराज जरासन्ध के घर चली गईं और अपने वैधव्य का सारा कारण उसे कह सुनाया। वह अप्रिय वृत्तान्त सुनकर शोक और क्रोध से भरे जरासन्ध ने पृथ्वी को यादवों से रहित कर देने का संकल्प किया। तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर उसने यदुओं की राजधानी मथुरा पर चढ़ाई की और उसे चारों ओर से घेर लिया।



अपनी विधवा पुत्रियों के शोक से व्याकुल मगधराज जरासन्ध यदुओं की राजधानी मथुरा को तेईस अक्षौहिणी सेना से घेर लेता है — किनारे तोड़कर उमड़े समुद्र-सी सेना।

प्रभु अपने अवतार के प्रयोजन पर विचार करते हैं

श्रीकृष्ण ने किनारे तोड़कर उमड़े समुद्र-सी उस सेना को, उससे घिरी अपनी नगरी को और भय से काँपते अपने जनों को देखा। वे स्वयं श्रीहरि हैं, जो प्रयोजनवश मनुष्य-रूप में प्रकट हुए हैं; उन्होंने अपने अवतार के हेतु और देश-काल की माँग पर विचार किया। फिर उन्होंने निश्चय किया: “जरासन्ध द्वारा जुटाई अधीन राजाओं की यह सेना, पृथ्वी पर एकत्र यह भार, मैं अवश्य नष्ट करूँगा। किन्तु जरासन्ध को मारना नहीं है; छोड़ दिए जाने पर वह निश्चय ही फिर सेना जुटाने का उद्यम करेगा।”

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।

संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥

etad-artho 'vatāro 'yaṁ bhū-bhāra-haraṇāya me saṁrakṣaṇāya sādḥūnāṁ kṛto 'nyeṣāṁ vadhāya ca

अर्थ: मेरा यह अवतार इसी प्रयोजन से हुआ है — पृथ्वी का भार हरने, साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का वध करने के लिए। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 9)

वराह और नृसिंह जैसे अन्य रूप भी, प्रभु ने कहा, वे समय-समय पर धर्म की रक्षा के लिए धारण करते हैं।

यही इस अध्याय का हृदय है। प्रभु इसलिए नहीं लड़ते कि उन पर संकट है; वे इसलिए लड़ते हैं कि पृथ्वी भार से दबी है और वे उस भार को उतारने आए हैं। उनकी दया भी इसी प्रयोजन की सेवा करती है: अभिमानी राजा को इसलिए जीवित छोड़ा जाता है कि वह घेरे-पर-घेरा डालते हुए संसार की दुष्ट शक्तियों को एक ही स्थान पर जुटाता रहे, जहाँ से उन्हें हटाया जा सके। जो लम्बा युद्ध दिखता है, वह अन्त को पहले से जानने वाले प्रभु द्वारा श्लोक 9 के वचन की सुव्यवस्थित पूर्ति है।

आकाश से उतरे रथ

गोविन्द जब इस प्रकार विचार कर रहे थे, तभी आकाश से सूर्य के समान तेजस्वी दो रथ उतरे, प्रत्येक अपने सारथि सहित; और प्रभु के सनातन दिव्य आयुध स्वयं प्रकट हो गए। उन्हें देखकर हृषीकेश ने संकर्षण से कहा: “आर्य, देखिए, जिन यदुओं के आप रक्षक हैं, उन पर कैसा संकट आ पड़ा है। यह आपका रथ और ये आपके प्रिय आयुध आ गए हैं; इस पर चढ़कर अपने जनों का उद्धार कीजिए। हम दोनों का जन्म इसी के लिए है, प्रभो; तेईस अक्षौहिणी नामक पृथ्वी के इस भार को उतार दीजिए।”

तब दोनों दाशार्ह कवच पहनकर, अपने रथों पर आरूढ़ होकर, थोड़ी-सी सेना के साथ नगर से बाहर निकले। खुले मैदान में आकर दारुक को सारथि बनाए हुए श्रीहरि ने शंख बजाया, और शत्रु-सेना के हृदय भय से काँप उठे।



प्रभु जब अपने अवतार के प्रयोजन पर विचार कर रहे हैं, तभी आकाश से सूर्य-से तेजस्वी दो रथ और उनके सनातन आयुध उतरते हैं, और कृष्ण बलराम से पृथ्वी का भार उतारने को कहते हैं।

जरासन्ध का उपहास और प्रभु का उत्तर

मगधराज ने दोनों भाइयों का उपहास किया: “हे कृष्ण, पुरुषाधम! तू अकेला बालक है, तुझसे लड़ने में मुझे लज्जा आती है। इतने दिन छिपे रहने वाले मूढ़, अपने मामा के हत्यारे, तू यहाँ से चला जा। और हे बलराम, यदि तुझमें युद्ध की इच्छा हो तो मुझसे लड़; या तो मेरे बाणों से छिन्न शरीर छोड़कर स्वर्ग जा, या मुझे मार डाल।”

न वै शूरा विकथन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।

न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ १९ ॥

na vai śūrā vikatthante darśayanty eva pauraṣam na gr̥hṇīmo vaco rājann āturasya mumūrṣataḥ

अर्थ: श्रीभगवान् ने कहा — शूरवीर डींग नहीं मारते; वे अपना पौरुष दिखा देते हैं। हे राजन्, तुम शोक से आतुर हो और मरने वाले हो; हम तुम्हारे वचनों को मन में नहीं लेते। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 19)

मथुरा के सामने युद्ध

जरा का पुत्र दोनों माधवों पर टूट पड़ा और उसने अपनी विशाल सेना से उन्हें, उनकी सेना, रथों, ध्वजाओं, घोड़ों और सारथियों सहित वैसे ही ढक लिया जैसे आँधी बादलों से सूर्य को और धूल से अग्नि को ढक देती है। मथुरा की अटारियों और गोपुरों से स्त्रियाँ देख रही थीं; जब उन्हें गरुड़ और ताड़ की ध्वजाओं वाले रथ दिखने बन्द हो गए, तो वे शोक से मूर्च्छित हो गईं।

अपनी छोटी-सी सेना को बाणों की उस घनी वर्षा से पीड़ित देखकर श्रीहरि ने देवताओं और असुरों द्वारा पूजित अपना श्रेष्ठ शार्ङ्ग धनुष टंकारा। बिना रुके तीखे बाणों की झड़ी लगाते हुए वे अलात-चक्र की भाँति घूमते रहे और चारों ओर रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक गिराते गए, यहाँ तक कि रणभूमि में रक्त की धाराएँ बह चलीं, जो कायरों को भयभीत और वीरों को उत्साहित करती थीं। और अपरिमित तेज वाले संकर्षण ने अपने मूसल से उन्मत्त शत्रुओं को कुचलते हुए उस सेना के शेष भाग को भी नष्ट कर दिया, जो समुद्र-सी भयंकर और अपार थी। वसुदेव के दोनों पुत्रों, जगदीश्वरों के लिए यह सब केवल एक लीला थी।



बादलों से सूर्य की भाँति मगध सेना से घिरे कृष्ण का शार्ङ्ग धनुष और बलराम का मूसल शत्रु-पंक्तियों में तेज बनकर चमकते हैं, जबकि मथुरा की स्त्रियाँ अटारियों से व्याकुल होकर देखती हैं।

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहितेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।

न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ २९ ॥

sthity-udbhavāntaṁ bhuvana-trayasya yaḥ samīhite 'nanta-guṇaḥ sva-līlayā na tasya citraṁ para-pakṣa-nigrahas tathāpi martyānuvidhasya varṇyate

अर्थ: जो अनन्त गुणों वाले प्रभु अपनी लीला से तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं, उनके लिए शत्रु-पक्ष का दमन कोई आश्चर्य नहीं है; फिर भी इसका वर्णन इसलिए किया जाता है कि वे मनुष्यों का अनुकरण करते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 29)

जरासन्ध पकड़ा गया और छोड़ा गया

जैसे एक सिंह दूसरे सिंह को पकड़ ले, वैसे ही बलराम ने महाबली जरासन्ध को पकड़ लिया, जिसका रथ नष्ट हो चुका था और जिसके पास केवल प्राण बचे थे। किन्तु गोविन्द ने, जो उसके द्वारा अपना कार्य सिद्ध कराना चाहते थे, बलराम को उसे वारुण-पाश और मनुष्यों की रस्सियों से बाँधने से रोक दिया।

बध्यमानं हतारति पाशैर्वारुणमानुषैः ।

वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३१ ॥

badhyamānaṁ hatārātiṁ pāśair vāruṇa-mānuṣaiḥ vārayām āsa govindas tena kārya-cikīrṣayā

अर्थ: अनेक शत्रुओं का हन्ता वह राजा जब वारुण और मानुष पाशों से बाँधा जा रहा था, तब गोविन्द ने उसके द्वारा अपना कार्य सिद्ध कराने की इच्छा से उसे रोक दिया। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 31)



जैसे एक सिंह दूसरे को पकड़े, वैसे बलराम रथहीन जरासन्ध को पकड़ लेते हैं, किन्तु गोविन्द उनका हाथ रोककर राजा को छोड़ देते हैं, ताकि उसके द्वारा उनका अपना कार्य सिद्ध हो — जैसा श्लोक 31 कहता है।

दोनों लोकनाथों द्वारा छोड़े जाने पर लज्जित जरासन्ध ने तपस्या का संकल्प किया; किन्तु मार्ग में अन्य राजाओं ने शास्त्र और नीति के वचनों से उसे रोका, यह कहकर कि यदुओं से यह पराजय उसे अपने ही पूर्व कर्मों के बन्धन से मिली है। प्रभु द्वारा उपेक्षित बृहद्रथ का पुत्र खिन्न मन से मगध लौट गया।

मथुरा विजयी प्रभु का स्वागत करती है

अक्षत सेना वाले मुकुन्द ने शत्रु-सेना के समुद्र को बिना प्रयास पार कर लिया था। देवताओं ने उन पर फूल बरसाए, और सन्ताप से मुक्त मथुरावासी उनके स्वागत को निकले, जबकि वन्दीजन उनकी विजय का गान कर रहे थे। उनके नगर में प्रवेश करते समय शंख, दुन्दुभि, वीणा और वेणु एक साथ बज उठे; मार्गों पर जल छिड़का गया, पताकाओं और तोरणों से गलियौं सजीं, और वेदध्वनि से वातावरण गूँज उठा। स्त्रियों ने उन पर फूल, दही, अक्षत और अंकुर बरसाए और स्नेह-भरी आँखों से उन्हें निहारा। रणभूमि में पड़ा सारा धन प्रभु ने राजा उग्रसेन को अर्पित कर दिया।

सत्रह घरे और कालयवन का आगमन

इस प्रकार हर बार तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर मगधराज ने कृष्ण द्वारा रक्षित यदुओं से सत्रह बार युद्ध किया। हर बार कृष्ण के तेज से सम्पन्न वृष्णियों ने उसकी समूची सेना नष्ट कर दी, और हर बार राजा छोड़ा जाकर लौट गया। किन्तु जब अठारहवाँ युद्ध होना अभी शेष था, तभी नारद मुनि का भेजा हुआ कालयवन नामक यवन वीर आ पहुँचा। नारद से यह सुनकर कि यदु उसके समान हैं, मनुष्यों में अप्रतिद्वन्द्वी उस योद्धा ने तीन करोड़ म्लेच्छों के साथ मथुरा को घेर लिया।

प्रभु का विचार और द्वारका का निर्माण

उसे देखकर संकर्षण-सहित कृष्ण ने विचार किया: “अहो, यदुओं पर दोनों ओर से बड़ा संकट आ पड़ा है। इस महाबली यवन ने आज हमें घेर लिया है, और मगधराज भी आज, कल या परसों आ ही जाएगा। यदि हम दोनों इससे लड़ रहे हों और उसी बीच जरासन्ध आ जाए, तो वह हमारे बन्धुओं को मार डालेगा या उन्हें उठा ले जाएगा। इसलिए आज ही हम ऐसा दुर्ग बनाएँगे जहाँ मनुष्य न पहुँच सके, उसमें अपने स्वजनों को बसाकर फिर इस यवन का वध कराएँगे।”

इति सम्मन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ।

अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ४९ ॥

iti sammantrya bhagavān durgam dvādaśa-yojanam antaḥ-samudre nagaram kṛtsnādbhutam acikarat

अर्थ: इस प्रकार विचार कर भगवान् ने समुद्र के भीतर बारह योजन का एक दुर्ग-नगर बनवाया, जो सर्वथा अद्भुत था। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 49)

देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा पश्चिमी समुद्र में रची उस नगरी में त्वष्टा का विज्ञान और शिल्प की सर्वोत्तम निपुणता प्रकट थी। उसकी सड़कें, गलियाँ और चौक शास्त्रों के अनुसार ठीक-ठीक बने थे। वह कल्पवृक्षों के उद्यानों से सुशोभित थी; उसकी स्फटिक की अटारियाँ और गोपुर सोने के शिखरों से आकाश छूते थे; चाँदी और पीतल के कोठार सोने के कलशों से सजे थे; सोने के घरों पर रत्नों के शिखर और पत्तों के फर्श थे; और वास्तुदेवताओं के मन्दिर भी थे। चारों वर्णों के लोगों से भरी वह नगरी यदुश्रेष्ठों के भवनों से जगमगाती थी।

देवताओं के उपहार और द्वारका-गमन

महेन्द्र ने श्रीहरि के लिए अपनी सुधर्मा सभा और पारिजात वृक्ष भेजा, जिसके नीचे रहने वाला मनुष्य मर्त्य-धर्मों से बँधा नहीं रहता। वरुण ने मन के समान वेगवान, एक कान श्याम वाले श्वेत घोड़े भेजे; कुबेर ने आठ निधियाँ; और अन्य लोकपालों ने अपनी-अपनी सम्पदाएँ। भगवान् ने उन्हें जो-जो आधिपत्य दिया था, वह सब उन्होंने उन्हें लौटा दिया, क्योंकि श्रीहरि स्वयं पृथ्वी पर आ गए थे।

तब कृष्ण ने योगबल से मथुरा के सब लोगों को उस नगरी में पहुँचा दिया। प्रजापालक बलराम से परामर्श करके प्रभु कमल-माला पहने, बिना किसी शस्त्र के, नगर के द्वार से बाहर निकले।

तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥ ५७ ॥

*tatra yoga-prabhāvena nītvā sarva-janaṁ hariḥ prajā-pālena rāmeṇa kṛṣṇaḥ samanumantritaḥ
nirjagāma pura-dvārāt padma-mālī nirāyudhaḥ*

अर्थ: योगबल से सब लोगों को वहाँ पहुँचाकर और प्रजापालक बलराम से परामर्श करके कृष्ण कमल की माला पहने, निःशस्त्र, नगर के द्वार से बाहर निकले। (स्कन्ध 10, अध्याय 50, श्लोक 57)



योगबल से मथुरा के लोगों को द्वारका पहुँचाकर कृष्ण कमल-माला पहने, बिना शस्त्र के, नगर के द्वार से बाहर निकलते हैं, जबकि कालयवन की सेना परकोटे के बाहर प्रतीक्षा कर रही है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु पृथ्वी का भार उतारने अवतरित होते हैं। श्लोक 9 में कृष्ण अपने आने का कारण स्पष्ट कहते हैं — धरती का बोझ उतारना, सज्जनों को बचाना और दुष्टों का नाश। उनका अवतार संकट की प्रतिक्रिया नहीं, अपितु संकट से पहले ही निश्चित हुआ प्रयोजन है।
2. शूरवीर कर्म करते हैं, डींग नहीं मारते। श्लोक 19 में जरासन्ध के उपहास का उत्तर देते हुए प्रभु कहते हैं कि वीर अपना पौरुष दिखाते हैं, उसकी चर्चा नहीं करते।
3. प्रभु की विजय उनकी लीला है। श्लोक 29 स्मरण कराता है कि जो लीला से ही त्रिलोकी की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, उनके लिए सेना बिखेर देना कोई आश्चर्य नहीं; कथा इसलिए कही जाती है कि वे मनुष्य-सा आचरण चुनते हैं।

4. दया भी उनकी योजना की सेवा करती है। श्लोक 31 में कृष्ण जरासन्ध को इसलिए छोड़ते हैं कि उसके द्वारा उनका बड़ा कार्य सिद्ध हो। प्रभु का संयम दुर्बलता नहीं, अपितु उस ऊँचाई से देखा गया प्रयोजन है जहाँ हम नहीं पहुँच सकते।

5. सारी शक्ति उनकी है, और उनके जन पहले सुरक्षित किए जाते हैं। प्रभु के पृथ्वी पर आते ही लोकपाल अपने आधिपत्य उन्हें लौटा देते हैं, और अकेले कालयवन का सामना करने से पहले वे अपने जनों को द्वारका में बसा देते हैं। हमारे पास जो कुछ है, वह उनका दिया हुआ है, और जो उनका है, उसे युद्ध से पहले ही सुरक्षित कर लिया जाता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हृदय को सबसे अधिक जो छूता है, वह तेईस अक्षौहिणी सेनाओं का गर्जन नहीं, बल्कि इसके अन्त का एक शान्त चित्र है: कृष्ण, जिन्होंने अभी-अभी समुद्र में एक नगरी रची और एक पूरी प्रजा को उसमें पहुँचाया, हाथों में केवल कमल की माला लिए मथुरा के द्वार से बाहर निकलते हैं। जो प्रभु रणभूमि में अलात-चक्र की तरह घूमे थे, वही अब तीन करोड़ शत्रुओं की ओर शान्त भाव से चल पड़ते हैं। वे कभी व्याकुल नहीं होते, क्योंकि वे अपने लिए नहीं लड़ते; वे धरती का बोझ उतारते और अपने जनों को शरण देते हैं। यदि दोनों ओर से घिरे होकर भी वे इतने अविचल रह सकते हैं, तो हम भी अपने भयों की पकड़ ढीली कर सकते हैं। हमारा काम है उस नगरी के भीतर बने रहना जो उन्होंने हमारे लिए रची है, इस विश्वास के साथ कि यदुओं के रक्षक ने हर घेरे का अन्त पहले ही नाप लिया है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज जब चिन्ताएँ कई ओर से घेरें, तब रुककर स्मरण करें कि कृष्ण ने कालयवन का सामना करने से पहले द्वारका रची थी। प्रभु से धीरे से कहें, “आपने मेरे लिए सुरक्षित स्थान पहले ही बना दिया है।” फिर दिन के कार्य आरम्भ करें, धीरे-धीरे जपते हुए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय इतिहास में प्रभु के अवतार को कार्य करते दिखाता है: जरासन्ध का शोक सत्रह घेरों में बदलता है, मगध की सेना लीला की भाँति बिखर जाती है, और अभिमानी राजा योजना के अनुसार छोड़ दिया जाता है। कालयवन के आने पर कृष्ण समुद्र में द्वारका रचते हैं, योगबल से अपने जनों को वहाँ पहुँचाते हैं और नए शत्रु से मिलने निःशस्त्र बाहर निकलते हैं। एक ही सत्य सबको बाँधता है: प्रभु एक ही प्रयोजन से लड़ते, क्षमा करते और रचते हैं — पृथ्वी का भार हरना और अपने भक्तों को सुरक्षित रखना। वे हमारे हृदय की नगरी की रक्षा करें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), पञ्चाशत्तम अध्याय।

- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-50-krishna-establishes-dvaraka-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

